

जैनागम की मूल भाषा प्राकृत

— डॉ. आशीष जैन आचार्य, शाहगढ़

(राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त)

संयुक्त मंत्री

अ.भा.दि.जैन शास्त्र परिषद्

प्राकृत प्रकृति का अपरनाम है। प्रकृति अर्थात् स्वभाव। जो स्वभाव से निरुसृत होने वाली भाषा है, वह प्राकृत है। प्राकृत भाषा के रूप में कब परिवर्तित हुई? इसके समुचित प्रमाण मिलते भी हैं और नहीं भी। परन्तु प्रारंभिक रूप इसका बोली के रूप में ही रहा। यह अनेक भाषाओं की जननी है। इससे ही अनेक भाषायें निरुसृत हुई हैं। अनेक बार ऐसा देखा जाता है कि पिता से योग्य उसका पुत्र निकलता है, परन्तु पिता तो पिता ही होता है। प्राकृत से ही संस्कृत का निर्माण हुआ है, संस्कृत परिनिष्ठित, शुद्ध, परिष्कृत एवं संस्कृत स्वरूप में प्रतिष्ठित है। प्राकृत को ये उपलब्धि प्राप्त नहीं हैं, परन्तु संस्कृत की जननी/जनक प्राकृत ही है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। वैदिक काल में एक जनभाषा थी, और जनभाषा परिष्कृत होकर छान्दस् संस्कृत निरुसृत हुई। ऋग्वेद और विशेषतरु अथर्ववेद की भाषा में उक्त जनभाषा के सूत्रों का अवलोकन किया जा सकता है। अतर्लु साहित्यिक प्राकृत की उत्पत्ति छान्दस् जोड़ी जा सकती है, तद्भव प्राकृत शब्द छान्दस् संस्कृत से निरुसृत है, लौकिक संस्कृत से नहीं।

प्राकृत भाषा का बोध कराने वाला प्राकृत शब्द प्रकृति से बना है। आचार्य हेमचन्द्र, मार्कण्डेय, धनिक, सिंहदेवगणी आदि प्राचीन वैयाकरणों और आलंकारिकों ने प्राकृत की प्रकृति संस्कृति को माना है। आचार्य हेमचन्द्र जी ने कहा है —

प्रकृतिः संस्कृतम्। तत्र भवं तत आगतं वा प्राकृतम्। संस्कृतानन्तरं प्राकृतमधिक्रियते। संस्कृतानन्तरं च प्राकृतमधिक्रियते। संस्कृतानन्तरं च प्राकृतस्यानुशासनं। सिद्धसाध्यमानभेदसंस्कृतयोनेरेव तस्य लक्षणं न देश्यस्य इति ज्ञापनार्थम्।

अर्थात् प्रकृति — संस्कृत है, इस संस्कृत से आयी हुई भाषा प्राकृत है। संस्कृत के पश्चात् प्राकृत का अधिकार आरंभ होता है। प्राकृत में जो शब्द संस्कृत के मिश्रित हैं, उनको संस्कृत के समान ही अवगत करना चाहिये। प्राकृत में तद्भव शब्द दो प्रकार के हैं — साध्यमान संस्कृतभव और सिद्ध संस्कृत भव।

आचार्य मार्कण्डेय के प्राकृतसर्वस्व में उल्लेखित है —

प्रकृतिरु संस्कृतम् । तत्र भवं प्राकृतमुच्यते ।

धनिक कहते हैं —

प्रकृतेरु आगतं प्राकृतम् । प्रकृतिरु संस्कृतम् ।

प्राकृतस्य तु सर्वमेव संस्कृतं योनिः ।

प्रकृतेः संस्कृतायास्तु विकृतिरु प्राकृती मता ।

प्रकृतेः संस्कृताद् आगतं संस्कृतम् ।

मूलप्रकृतिरविकृतिः ।

इसी प्रकार उक्त सभी वैयाकरण और आलंकारिक प्राकृत की उत्पत्ति संस्कृत से मानते हैं । इनके मतानुसार संस्कृत ही मूल प्रकृति है ।

उक्त व्युत्पत्तियों की विशेष व्याख्या करने पर निम्न फलितार्थ प्रस्तुत होते हैं —

१. **प्रकृतिः संस्कृतम् ।** इससे यह बात सिद्ध नहीं होती है कि संस्कृत से प्राकृत की उत्पत्ति हुई है, इससे यह बात स्पष्टतया सामने आती है कि संस्कृत भाषा से प्राकृत भाषा को सीखने का यत्न करना चाहिये । यही आशय आचार्य हेमचन्द्र जी ने प्रकट किया है ।

२. दोनों भाषाओं में कार्यकारण या जन्यजनक का भाव नहीं है, ये दोनों सहोदरा हैं, दोनों का विकास किसी अन्य स्रोत से होता है । वह स्रोत छान्दस् ही है ।

३. उच्चारण की दृष्टि से दोनों भाषाओं में भेद है, सामान्य नागरिक प्राकृत बोलते हैं, संस्कारापन्न नागरिक संस्कृत । वस्तुतः संस्कृत और प्राकृत एक ही भाषा के दो रूप हैं ।

प्राकृत शब्द 'प्राक् कृत' पद से बना है और प्राक् कृत का अर्थ है — पहले किया गया । द्वादशांग ग्रन्थों में ग्यारह अंग ग्रन्थ पहले किये गये हैं और इन ग्यारह अंग ग्रन्थों की भाषा आर्ष वचन में — सूत्र में अर्धमागधी कही गयी है, जो बालक, महिला आदि को सुबोध — सहज गम्य है और जो सकल भाषाओं का मूल है । यह अर्धमागधी भाषा ही प्राकृत है । ।

गुडवहो नामक महाकाव्य में प्राकृत भाषा को जनभाषा कहा है और इस भाषा से ही समस्त भाषाओं का विकास स्वीकार किया है —

सयलाओ इमं वाया विसंति एत्तो य णेंति वायाओ।

एंति समुदं चिय णेंति सायराओ च्विय जलाइं।।

कवि वाक्पतिराज कहते हैं —

याद्योनिः किल संस्कृतस्य सुदशां जिह्वासु यन्मोदते।

प्राकृत को संस्कृत की योनि विकास स्थान कहा है।

ये तो स्वभाव से हैं। प्राकृत भाषा जन-जन की भाषा रही है। सम्पूर्ण विश्व में भाषाओं को समूह अर्थात् परिवारों में विभक्त किया है, विश्व में लगभग २०० से २५० भाषा परिवार हैं। इनमें से भारतीय भाषा परिवार को बारह भागों में विभक्त किया है, और उन बारह परिवारों में से प्रथम भारोपीय परिवार के अन्तर्गत आने आठ उपभाषा परिवार में भारत, ईरानी या आर्यभाषा परिवार, इसकी भी तीन शाखायें हैं, जिनमें से आर्यभाषा परिवार की भाषा का नाम प्राकृत है। प्राकृत का कौटुम्बिक सम्बन्ध आर्यभाषा परिवार से ही है, इसके विकास को विद्वानों ने तीन भागों में विभक्त किया है —

१. प्राचीन भारतीय आर्यभाषाकाल (१६०० ई.पू. से ६०० ई.पू. तक)
२. मध्यकालीन आर्यभाषाकाल (६०० ई.पू. से १००० तक)
३. आधुनिक आर्यभाषाकाल (ई. १००० से वर्तमान समय)

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा का रूप ऋग्वेद की ऋचाओं में सुरक्षित है। प्राकृत भाषा की गणना मध्य भारतीय आर्यभाषा में की जाती है एवं इसका विकास वैदिक संस्कृत या छान्दस् संस्कृत से माना जाता है। प्राकृत की प्रकृति वैदिक भाषा से मिलती-जुलती है। डॉ. हरदेव बाहरी का अभिमत है — प्राकृत से वेद की साहित्यिक भाषा का विकास हुआ, प्राकृतों से संस्कृत का विकास भी हुआ है और प्राकृतों से इनके अपने साहित्यिक रूप भी विकसित हुये हैं।

प्राकृत के भेद — प्राकृत भाषा के मूल रूप से दो भेद हैं — कथ्य और साहित्य। कथ्य भाषा की झलक प्रथम स्तरीय प्राकृत छान्दस् में मिलती है।

क द्वितीय स्तरीय प्राकृत भाषा को तीन भागों में विभक्त किया गया है।

१. प्रथम युग
२. मध्य युग
३. उत्तर अर्वाचीन युग या अपभ्रंश युग।

क प्रथम युगीन प्राकृतों में —

१. शिलालेखी प्राकृत
२. प्राकृत धम्मपद की प्राकृत
३. आर्ष—पालि
४. प्राचीन जैन सूत्रों की प्राकृत
५. अश्वघोष के नाटकों की प्राकृत।

इस युग की समय सीमा ई.पू. ६वीं शती से ईस्वी द्वितीय शताब्दी तक है। बौद्ध जातकों की भाषा भी इसी युग के अन्तर्गत मानी जा सकती है।

क मध्ययुगीन प्राकृतों में —

१. भास और कालिदास के नाटकों की प्राकृत
२. गीतिकाव्य और महाकाव्यों की प्राकृत
३. परवर्ती जैन काव्य—साहित्य की प्राकृत
४. प्राकृत वैयाकरण द्वारा निरूपित और अनुशासित प्राकृतें एवं
५. बृहत्कथा की पैशाची प्राकृत।

इस युग की कालसीमा ई. २०० से ६०० ई. तक है।

क उत्तर अर्वाचीन युग या अपभ्रंश युग ई. ६०० से १२०० ई. तक है।

भाषा वैशिष्ट्य की दृष्टि से प्राकृत साहित्य के इतिहास को निम्नवर्गों में विभक्त किया गया है —

१. अर्धमागधी साहित्य
२. प्राचीन शौरसेनी या जैन शौरसेनी साहित्य।
३. महाराष्ट्री साहित्य।
४. शौरसेनी नाटक साहित्य।
५. मागधी साहित्य।

६. पैशाची साहित्य ।

७. अपभ्रंश साहित्य ।

जैनागम की मूल भाषा प्राकृत —

भगवान महावीर और भगवान बुद्ध के उपदेश प्राकृत में हुये। भगवान महावीर स्वामी के उपदेश अर्धमागधी प्राकृत और भगवान बुद्ध के उपदेश पालि में हुये। पालि भी प्राकृत का ही रूप है।

भगवान महावीर का मूल उपदेश अर्धमागधी में हुआ था। भगवान महावीर स्वामी की शिष्यपरम्परा ने भी जनसामान्य में मान्यता एवं सदाचार के प्रचार के लिये इसी भाषा का व्यवहार किया। वर्द्धमान महावीर के उपदेशों का संग्रह उनके शिष्यों अर्थात् गणधरों ने किया। और उन गणधरों के द्वारा रचित जो ग्रन्थ है उनको श्रुत कहते हैं। श्रुत शब्द का अर्थ होता है सुना हुआ, जो गुरुमुख से सुना हुआ है वह श्रुत है। गणधर ने अपने शिष्यों को श्रुत का ज्ञान दिया और क्रम से शिष्य-प्रशिष्यों से श्रुत चलता हुआ आगम के नाम से प्रसिद्धी को प्राप्त हुआ।

कहा जाता है कि समस्त श्रुत-ज्ञान के अंतिम उत्तराधिकारी श्रुतकेवली भद्रबाहु हुये। इनका समय महावीर के निर्वाण के दो सौ वर्ष के बाद — चन्द्रगुप्त के राज्यकाल में माना जाता है। उस समय मगध में एक भीषण अकाल पड़ा, जो १२ वर्षों तक रहा। भद्रबाहु श्रुतकेवली अनेक जैन मुनियों के साथ मुनिचर्या निर्वाह के हेतु दक्षिण भारत को चले गये। इस उथल-पुथल में जैनागम का संरक्षण कठिन हो गया। जो मुनि उत्तरभारत में रह गये, वे शिथिल हो गये और श्वेतवस्त्र धारण करने लगे। तभी से जैनमत में दो सम्प्रदाय हो गये — श्वेताम्बर और दिगम्बर। दिगम्बर साधु वे थे जो भगवान ऋषभदेव और भगवान महावीर स्वामी के पदचिह्नों का अनुगमन करते थे और दिगम्बर रूप में विचरण करते हैं। दिगम्बर सम्प्रदाय की मान्यता है कि

१. आचाराङ्ग

२. सूत्रकृताङ्ग

३. स्थानाङ्ग

४. समवायाङ्ग

५. व्याख्याप्रज्ञप्ति

६. ज्ञातृधर्मकथाङ्ग

७. उपासकाध्ययन

८. अन्तःकृददशाङ्ग

९. अनुत्तरोपपाद

१०. प्रश्रव्याकरण

११. विपाक सूत्र

१२. दृष्टिवाद

इन बारह अंगों का ज्ञान प्रतिभा और मेधा की कमी के कारण क्षीण होने लगा। वीर निर्वाण के ६८३ वर्ष पश्चात् उक्त द्वादशाङ्ग का कुछ अंश ही स्मरण रह गया और शेष ज्ञान स्मृति क्षीण होने से काल के गाल में समाविष्ट हो गया। अतरु धरसेनाचार्य के तत्त्वावधान में सत्कर्मप्राभृत (षट्खण्डागम) और गुणधर आचार्य के तत्त्वावधान में कसायपाहुड नामक आगम सूत्र गन्थ लिखे गये। इन ग्रन्थों की भाषा शौरसेनी है।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय की मान्यता है कि उक्त आगम ग्रन्थों की उत्पन्न होती हुई विकृतियों से बचने के लिये समय-समय पर मुनियों ने उसकी वाचनायें की और उन्हें सुरक्षित रखने का पूर्ण प्रयत्न किया।

जैनागम की भाषा को अर्धमागधी कहा गया है। परन्तु जिस अर्धमागधी में भगवान महावीर स्वामी का उपदेश हुआ था उसका स्वरूप कैसा रहा? और जो जैनागम में अर्धमागधी का स्वरूप है उसका स्वरूप क्या है? इसमें कितनी भिन्नता है, इसको सुस्पष्ट रूप से नहीं कहा जाता है। उदाहरण के तौर पर श्वेताम्बर सम्प्रदाय की मान्यता है कि उक्त आगम ग्रन्थों की उत्पन्न होती हुई विकृतियों से बचने के लिये समय-समय पर मुनियों ने उसकी वाचनायें की और उन्हें सुरक्षित रखने का पूर्ण प्रयत्न किया। यहा भिन्नता परिलक्षित होती है इसके गद्य और पद्य भाग में। जहाँ एक ओर गद्य भाग प्राचीन परिलक्षित होता है पद्य भाग में प्राचीन परिलक्षित नहीं होती है। अर्धमागधी के प्राचीन रूप का आभास अशोक के उड़ीसा प्रदेशवर्ती कालसी जौगढ़ एवं धौली नामक स्थानों पर उत्कीर्ण १४ प्रशस्तियों में मिलता है। इनमें 'के स्थान पर फ और ल, एवं श, ष और स् के स्थान पर स् मिलता है।

शौरसेनी प्राकृत, जिसके बीज पालि में और अशोक के गिरनार प्रशस्तियों में पाये जाते हैं, दिगम्बर जैनागम की भाषा है। वीर निर्वाण संवत् ६८३ के लगभग जब अंगज्ञान लुप्त होने लगा था, तो खण्डशरु ज्ञान के आधार पर कर्मप्राभृत (षट् खण्डागम) एवं कसायपाहुड जैसे गंभीर सैद्धान्तिक ग्रन्थों का प्रणयन किया गया। यह यहाँ ज्ञातव्य है कि उपलब्ध अर्धमागधी भाषा की अपेक्षा उपलब्ध शौरसेनी भाषा प्राचीन है। कालगणनानुसार प्राप्त शौरसेनी अर्धमागधी

की अपेक्षा तीन सौ वर्ष प्राचीन है। आर्षप्राकृत में अर्धमागधी और शौरसेनी दोनों ही भाषाओं का वर्णन करना अनिवार्य है।

अर्धमागधी – साधारणतरु अर्धमागधी शब्द की उत्पत्ति – अर्धमागध्या अर्थात् जिसका अर्धांश मागधी कहा गया है। इसका मूल उत्पत्ति स्थान पश्चिम मगध और शूरसेन (मथुरा) का मध्यवर्ती प्रदेश अयोध्या है। तीर्थकरों के उपदेश की भाषा अर्धमागधी ही मानी गयी है।

अठारसदेसीभासानिययं वा अद्धमागहं।

१८ देशी भाषाओं से निबद्ध अद्धमागधी है। अन्यत्र भी इसे सर्वभाषामयी कहा है।

समवायाङ्ग सूत्र में अर्धमागधी की विशेषताओं का निरूपण करते हुये कहा है कि आर्य और अनार्य इस भाषाओं को अनुचित नहीं मानते हैं।

भगवान् महावीर अर्धमागधी भाषा में धर्मोपदेश देते थे। यह शान्ति, आनन्द और सुखदायिनी भाषा आर्य, अनार्य, द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी और सरीसृपों के लिये उनकी अपनी-अपनी शैली में परिणत हो जाती थी।

अर्धमागधी का गठन – सर्वमान्य सिद्धान्त है कि अर्धमागधी का गठन मागधी और शौरसेनी से हुआ है। हार्नले ने समस्त प्राकृत बोलियों को दो भागों में बाँटा है – शौरसेनी और मागधी। फलतरु शौरसेनी और मागधी के संयोग से अर्धमागधी बनी है। मार्कण्डेय ने प्राच्या का व्याकरण शौरसेनी के समान बतलाया है।

प्राच्याः सिद्धिः शौरसेन्याः।

यद्यपि मार्कण्डेय ने प्राच्या की विशेषताओं पर प्रकाश नहीं डाला है, पर इतना स्पष्ट है कि प्राचीन समय में पूर्व की बोली मागधी और पश्चिम की बोली शौरसेनी कही जाती थी। अतएव अर्धमागधी में मागधी और शौरसेनी की प्रवृत्तियों का समन्वय पाया जाना युक्तिसंगत है।

शौरसेन्या अदूरत्वादियमेवार्धमागधी।

अर्थात् शौरसेनी भाषा के निकट वर्ती होने के कारण मागधी ही अर्धमागधी है।

प्राचीन शौरसेनी या जैन शौरसेनी – प्राकृत भाषा के दो प्राचीन भेद मिलते हैं एक मागधी और दूसरी शौरसेनी। एक प्रचार काशी के पूर्व में और दूसरी का प्रचार काशी के पश्चिम में था। सम्राट् अशोक ने अपने शिलालेखों में इन दोनों भाषाओं को उत्कीर्ण किया है। गिरनार, खारवेल के शिलालेख भी इसी शौरसेनी में उत्कीर्ण हैं।

यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि ई. सन् की प्रथम शती के लगभग — वीर निर्वाण संवत् ६८३ में काठियावाड़ भी जैन संस्कृति का केन्द्र था। धरसेनाचार्य गिरनार की चन्द्रगुफा में रहते थे। उन्होंने वहाँ पुष्पदन्त और भूतबलि नामक आचार्यों को बुलवाकर आगम ज्ञान प्रदान किया, जिसके आधार पर उन दोनों ने द्रविड़ देश में जाकर षट्खण्डागम के सूत्रों की रचना पश्चिमीय और दक्षिणीय प्राकृत भाषा — प्राचीन शौरसेनी में की। इसके पश्चात् कुंदकुंद आदि आचार्यों ने इसको सार्वभौमिकता प्रदान की। एक प्रकार से दिगम्बर जैन आगम की यह मूल भाषा है।

शौरसेनी का प्रभाव, दक्षिण, पश्चिम और पूर्व भारत में सर्वत्र था। अनेक विद्वानों ने इसे सबसे शुद्ध प्राकृत मानी है। कुछ विद्वानों ने तो यहाँ तक माना की, महाराष्ट्री प्राकृत भी इसी शौरसेनी का एक भेद है, अलग से स्वतंत्र प्राकृत नहीं है। भेद की दृष्टि से शौरसेनी को ही स्वतंत्र भाषा माना है। नाटकों में भी शौरसेनी का व्यापक प्रयोग मिलता है। प्राचीन शौरसेनी का रूप जैनागम के मूल ग्रन्थों में विद्यमान है, नाटकों की शौरसेनी इससे थोड़ी भिन्न अवश्य है, पर वह इसी में समाहित हो जाती है।

□ शौरसेनी भाषा में रचित जैनागम —

१. षट्खण्डागम — यह आगम ग्रन्थ छह खण्डों में विभक्त है — जीव-ाण, खुद्दाबंध, बंधसामित्तविचय, वेदना, वग्गणा और महाबन्ध। इस ग्रन्थ का विषय स्रोत बारहवें दृष्टिवाद श्रुतांग के अन्तर्ग द्वितीय पूर्व आग्रयणीय के चयनलब्धि नामक ५वें अधिकार के चौथे पाहुड कर्मप्रकृति को माना जाता है। सूत्र की परिभाषा के संबंध में बताया गया है —

सुत्तं गणहरकहियं तहेव पत्तेयबुद्धकहियं य।

सुदकेवलिणा कहियं अभिण्णदसपुव्वहियं च।।

सूत्र वह है जिसका कथन गणधर, प्रत्येकबुद्ध, श्रुतकेवली और अभिन्नदशपूर्वी ने किया हो। अतर्गु उक्त आगमग्रन्थ में सूत्र की यह परिभाषा घटित होती है।

२. कसायपाहुड (कषाय प्राभृत) — इस ग्रन्थ का अपरनाम पेज्जदोसपाहुड भी है। पेज्ज का अर्थ राग है। अर्थात् राग और द्वेष का निरूपण करता है। क्रोधादि कषायों की राग-द्वेष परिणति और उनके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बन्ध संबंधी विशेषताओं का विवेचन हो इस ग्रन्थ का मूल वर्ण्य विषय है। यह ग्रन्थ २३३ गाथा प्रमाण है। इस ग्रन्थ में पदों की संख्या १६ हजार है। इसमें १६ अधिकार है। इस ग्रन्थ के रचयिता आचार्यश्री गुणधर है। इसका रचना काल ईस्वी द्वितीय शती से ईस्वी प्रथम शती के मध्य का है।

३. महाबन्ध — इसका दूसरा नाम महाधवल भी है। यह षट्खण्डागम का छठा खण्ड है। इसकी रचना आचार्य भूतबलि द्वारा ४० हजार श्लोकप्रमाण में की गई है। इसका मंगलचरण भी पृथक् नहीं है। मात्र विशालता के कारण इसका पृथक् ग्रन्थ का रूप प्रदान किया गया है। इसमें चार अधिकार हैं।

शौरसेनी टीका साहित्य —

१. धवल टीका — षट्खण्डागम पर लिखी गई यह सबसे महत्वपूर्ण टीका है। इसके रचयिता आचार्यश्री वीरसेन हैं।

२. जयधवला टीका — कसायपाहुड ग्रन्थ पर जयधवला टीका है। आर्यमंक्षु और नागहस्ति ने कसाय का व्याख्यान किया तथा आचार्य यतिवृषभ ने इस पर चूर्णि सूत्रों की रचना की। आचार्यश्री वीरसेन ने जयधवला नाम की टीका लिखना प्रारंभ किया, तथा बीस हजार श्लोक प्रमाण टीका लिखने के अनन्तर ही उसका स्वर्गवास हो गया। फलतः उनके इस महान् कार्य को उनके योग्य शिष्य आचार्य जिनसेन ने चालीस हजार श्लोक प्रमाण अवशेष टीका लिखकर ईस्वी सन् ८३७ में इसे पूर्ण किया। इस प्रकार यह टीका ६० हजार श्लोकप्रमाण है।

इसके अलावा आचार्यश्री कुंदकुंद स्वामी के तीन प्रमुख ग्रन्थ प्रवचनसार, समयसार और पंचास्तिकाय सहित चौरासी पाहुड की रचना भी शौरसेनी प्राकृत में की गई है। यतिवृषभाचार्य ने तिलोयपण्णति, आचार्य व—केर ने मूलाचार, आचार्य शिवार्य ने भगवती आराधना, आचार्य कार्तिकेय स्वामी ने कार्तिकेयानुप्रेक्षा, आचार्य नेमिचन्द्र ने द्रव्यसंग्रह, बृहत्द्रव्यसंग्रह आदि ग्रन्थों का प्रणयन शौरसेनी में ही किया है। इसके अलावा भी अनेक न्यायादि के ग्रन्थों का प्रणयन शौरसेनी में किया गया। वर्तमान में भी अनेक आचार्य और विद्वत्गण भी शौरसेनी प्राकृत में रचनाएँ कर रहे हैं।

इस प्रकार से जैनागम की मूल रचना प्राकृत में हुई है। जहाँ एक ओर श्वेताम्बराचार्यों ने अर्धमागधी में रचना रची, वहीं दूसरी ओर दिगम्बर जैन आचार्यों ने शौरसेनी में मूल आगम की रचना की। शौरसेनी अर्धमागधी से पूर्व की है, प्राचीन है, क्योंकि मागधी और शौरसेनी का मिश्रित रूप अर्धमागधी है।

संदर्भ सूची —

- सिद्धहैमशब्दानुशासन ८/१/१— अथ प्राकृतम्।
- प्राकृतसर्वस्व १/१
- दशरूपक, टीका/परिच्छेद २/३०
- टीकाकार वासुदेव कृत संजीवनी टीका ६/२

- षड्भाषाचन्द्रिका/२५
- वाग्भट्टालंकार २/२ की टीका।
- सांख्यतत्त्वकौमुदी कारिका/३
- नमिसाधु द्वारा लिखित
- वाक्पतिराज कृत गउडवहो/६३
- राजशेखर कृत बालरामायण/४८,४९
- आगच्छतीति आगमः – जो परम्परा से चला आ रहा है, वह आगम है।
- जिनसेन महापुराण ३३पर्व/१२०
- वाग्भट्ट काव्यानुशासन/२
- समवायाङ्ग अहमदाबाद, सन् १९३८ ई. सूत्र ६८
- समवायाङ्ग अहमदाबाद, सन् १९३८ ई. सूत्र ६८
- कम्पैरेटिव ग्रामर भूमिका पृ.१७ और उसके बाद के पृष्ठ।
- प्राकृत सर्वस्व पृ १०३
- प्राकृत सर्वस्व पृ १०३
- धवला वग्गणखण्ड भाग १-३ पृ. ३७१

आयतस्तू:

– डॉ. आशीष जैन आचार्य

154, गीतांजलि ग्रीनसिटी संजय डाइव रोड सागर

9329092390